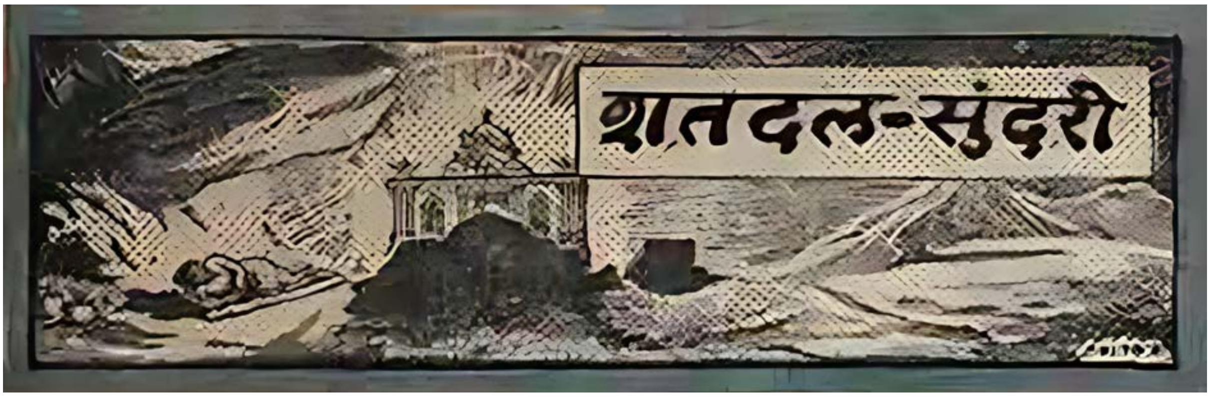

6



गुर्जर देश में अग्निमित्र नाम का एक राजपुत्र रहता था। सुन्दरता और शील में वह किसी से कम न था। लेकिन उसका कोई राज्य न था। फिर भी उसे विश्वास था कि किसी न किसी दिन वह जरूर राजा बनेगा। इसलिए वह दक्षिण देश की ओर चला गया। राह में उसे अनेक नदियाँ, जङ्गल और पहाड़ मिले। जब तक पैरों में ताकत रहती, तब तक चलता रहता। कुछ मिल जाता तो सा लेता और थक जाने पर किसी पेड़ के तले सो जाता। थकान मिटते ही उठ कर फिर चल देता।

इस तरह बहुत दिनों तक चलता चलता वह शङ्करगिरि नामक पहाड़ के पास पहुँचा। अन्धेरा हो गया था। इसलिए अग्निमित्र वहीँ एक चट्टान की आड़ में लेटा रहा । उसकी आँख झपकी ही थी कि सामने उसे एक सुन्दर मन्दिर दिखाई दिया। बड़ा ही विचित्र मन्दिर था वह। वह ईंट-पत्थर का बना हुआ नहीं था। सारा का सारा मन्दिर सोने का था। उसके शिखरों, प्राकारों और मण्डपों पर नवरत्नों से नक्काशी की गई थी। अग्निमित्र चकित होकर देखता रह गया । उसकी आँखें चौन्धिया गई। सबसे अजीब बात तो उसे यह जान पड़ी कि कुछ ही देर पहले जब वह इस राह से आया था तो उसे कहीं कोई मन्दिर नहीं दीख पड़ा था। फिर अचानक यह कहाँ से आ खड़ा हुआ ? ऐसा लगा कि यह सब जादू का खेल है और दक्षिण देश तो जादू-टोना के लिए मशहूर है ही। यहाँ पर बड़े-बड़े मायाबी लोग रहते हैं। नहीं तो यह मन्दिर पल भर में कैसे बन जाता !

इस तरह अग्निमित्र अचरज में डूबा हुआ था कि उसको अचानक एक बात सूझ गई।

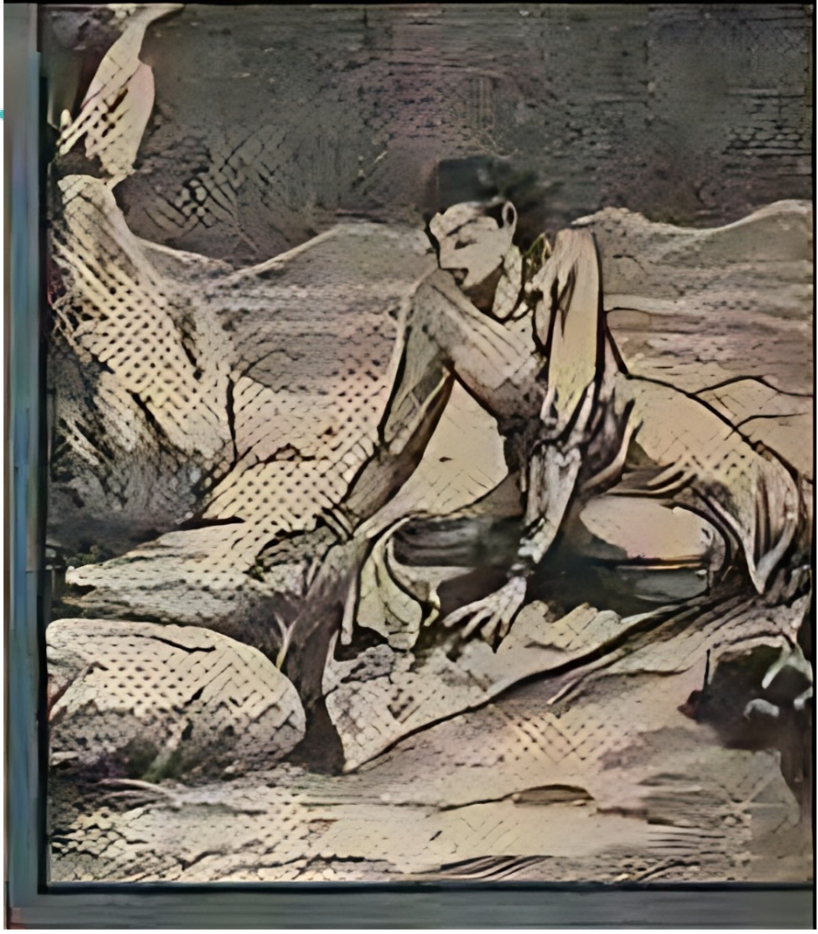
विजय वर्मा

उसने सोचा-"जरा इसको छूकर तो देखूँ कि यह मन्दिर सच्चा है या जादू का खेल है।" यह सोच कर वह उठ बैठा।

लेकिन यह क्या ? उसके उठते ही वह जगमगाता हुआ रत्न-जटित मन्दिर, उसके ज्योतिर्मय शिखर और विशाल प्राकार सभी कुछ छू-मन्तर हो गए। उसके आगे अन्धकार हो गया। यह देख कर वह एकदम घबरा गया और मुँह बाए खड़ा हो गया।

कुछ देर खड़े रहने के बाद वह फिर वहीं लेट गया। यह क्या! लेटते ही उसे वह मन्दिर और शिखर सब कुछ फिर ज्यों के त्यों दिखाई देने लगे। वह फिर उठा तो मन्दिर फिर गायब ! यह खेल कई बार हुआ।

तब अग्निमित्र को शक होने लगा कि कहीं वह सपना हो नहीं देख रहा है। तब दोनों हाथों से उसने अपनी आँखें मली और शरीर में चिकौटी काटी। जब दर्द हुआ तो निश्चय हो गया कि यह सब सपना नहीं है, यथार्थ है। वह झट उठ बैठा। लेकिन उठते हो फिर वही बात, मन्दिर गयब।



उसका सिर चक्कर खाने लगा और हार कर वह फिर लेट गया तो उसकी आँखों के सामने मन्दिर चमकने लग गया। उठने से फिर गायब न हो जाए, इसलिए वह लेटे ही लेटे मन्दिर की ओर एकटक देखता रहा । इतने में एक चींटी ने उसे काट लिया । वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। तुरन्त मन्दिर नदारद। अग्निमित्र को शक हुआ कि उसे जिस जीव ने काटा है वह चींटी है या और कुछ। इसलिए वह उस जगह हाथ से टटोल कर देखने लगा। इतने में एक जड़ी उसके हाथ लगी। तुरन्त मन्दिर उसको फिर दिखाई देने



लगा। उसे बड़ा अचरज हुआ कि इस बार उसके बैठने पर भी मन्दिर दिखाई दे रहा है। उस जड़ी को हाथ में लेकर डरते-डरते उठ खड़ा हुआ। आहा, मन्दिर दीखता ही रहा। धीरे धीरे वह मन्दिर की ओर कदम बढ़ाने लगा। उसका हृदय बल्लियों उछल रहा था। पास जाकर उसने मन्दिर की दीवार को डरते-डरते हाथ से छुआ कि कहीं गायब न हो जाए। लेकिन वह वो सच ही सोने का बना था। उसमें सचमुच ही मणि-मरकत आदि जड़े हुए थे।

अब अग्निमित्र की समझ में आया कि उठने पर वह क्यों नहीं दीख पड़ता था ! वह सब उस जड़ी की करामात थी। जब वह लेट जाता था, तब उसका शरीर उस जड़ी से सट जाता था और मन्दिर उसे दीखने लग जाता था। लेकिन उठ बैठने पर बड़ी उससे दूर पड़ जाती थी। इसलिए मन्दिर नहीं दीख पड़ता था। अब जड़ी उसके हाथ में थी। इसलिए वह मन्दिर को देख और छू सकता था। यह देख कर अभिमत्र के मन में हुआ कि चल कर देखे उस मन्दिर में क्या क्या है। इसलिए जड़ी हाथ में लिए वह अन्दर घुसा। अन्दर जाने पर दोनों और उसे पाँच-पाँच सोने के कड़ाह दीख पड़े। वे कड़ाह बहुत ऊँचे थे।

उनके अन्दर झाँकने के लिए अग्निमित्र को अंगूठों के बल खड़ा होना पड़ा। पहले कड़ाह में बतख के अण्डे जैसे बड़े-बड़े रत्न भरे थे। दूसरे में मरकतमणि। तीसरे में हीरे-जवाहर। बाकी कड़ाहों में भी मोती, मूँगे आदि कई बहुमूल्य रत्न भरे थे। दसवें कड़ाह में अशर्फियाँ थीं। यह सब देख कर अग्निमित्र का सिर चकराने लगा।

आखिर उसने अपना अङ्गोछा नीचे बिछा दिया और हरेक कड़ाह में से एक एक मुठ्ठी रत्न निकाल, अङ्गोछे पर रख कर उनकी पोटली बाँधने लगा। पर देखता क्या है कि हरेक कढ़ाह का सिर्फ एक एक रत्न ही अङ्गोछे पर था। बाकी सब न जाने कैसे अपने-अपने कड़ाह में पहुँच गए।



अग्निमित्र बुद्धिमान था। इसलिए उसने समझ लिया कि लालच बुरी बला है। वह उस पोटली को लेकर आगे बढ़ चला। गर्भ-गृह में पहुँचने पर उसने देखा कि एक सौ पंखुड़ियों वाले कमल के ऊपर तेजोमई मूर्ति विराजमान है। वह मूर्ति लक्ष्मी देवी की थी। उनके चरणों के निकट मणिमय अक्षरों में लिखा हुआ था "शतदल सुन्दरी"।

अग्निमित्र ने भक्ति भाव से मूर्ति को प्रणाम किया। परन्तु हाथ जोड़ते समय उसे जड़ी का ख्याल न रहा और वह छूट कर नीचे गिर गई। जड़ी के गिरते ही सब कुछ लापता हो गया। सिर्फ कन्धे पर रखी हुई जवाहरों की पोटली रह गई। उसने बहुत ढूँढ़ा, लेकिन जड़ी फिर न मिली।

आखिर निराश होकर अग्निमित्र पहाड़ के दूसरी ओर उतर गया। पहाड़ के दूसरी ओर एक बड़ा शहर दीख पड़ा। शहर में जाने पर अग्निमित्र को एक ढिँढोरा सुनाई पड़ा। वह कुछ नहीं समझ सका। इसलिए उसने एक राही से पूछा-"भाई ! ढिँढोरा बाला क्या कहता है ?"

"वही रोज का ढिँढोरा है। कोई नई बात नहीं है।" उसने जवाब दिया ।

"हो सकता है। लेकिन भाई में अजनबी हूँ। मेरे लिए तो यह नई ही बात है।" अग्निमित्र ने कहा ।

तब उस आदमी ने कहा-"अच्छा, तो सुनो! इस देश के राजा की एक लड़की है। उसका दिमाग खराब हो गया है। वह कहती है-'मैं व्याह नहीं करूँगी। करूँगी तो उसी से जो शतदल मुन्दरी के मन्दिर में जाकर जवाहर ले आएगा।' कहते है कि बचपन में किसी पगले साधु ने आकर उसे यह बात सुनाई थी। जब उससे पूछा जाता है कि 'कहाँ है वह मन्दिर' तो वह कहती है में क्या जानू !' मालूम नहीं, ऐसा कोई मन्दिर संसार में है कि नहीं ! फिर उस मन्दिर में से जबाहर कौन ले आए। राजा भी जरा सनकी है। नहीं तो उस पगली बिटिया की बात मान कर रोज इस बात का ढिँढोरा क्यों पिटवाता ! अब समझ गए न कि ढिँढोरा क्या है !" यह कह कर वह आदमी हँसते हुए चला गया।

अग्निमित्र ने उस शहर के राजा के पास जाकर कहा-"मैं शतदल-सुन्दरी के मन्दिर में से जवाहर लाया हूँ।"

यह यह सुन कर सब लोगों ने सोचा-"यह भी कोई पागल है।" लेकिन जब अमिमित्र ने जवाहरों की पोटली खोल कर दिखाई तो सब के मुँह बन्द हो गए।

इतने में राजा की लड़की को यह खबर मालूम हुई। तुरन्त वह दौड़ती हुई आई और अग्निमित्र के गले में वरमाला डाल दी। तब बहुत से लोग अग्निमित्र को तङ्ग करने लगे कि "हमें भी बताओ न ? वह मन्दिर कहाँ है ?"

अग्निमित्र ने उनसे कोई बात न छिपाई। उसने उनसे जड़ी का प्रभाव कह सुनाया। यह जान कर बहुत से लोग शङ्करगिरि पहाड़ के पास जाकर उस जड़ी को खोजने लगे । वे आज भी उसकी तलाश कर ही रहे हैं।





दास-दासी- गण चारों ओर से एकत्र होकर राजा को ढाँढस बँधाने लगे और बेहोश रानी की सेवा सुश्रूषा करने लगे। थोड़ी देर तक वहाँ जितने लोग थे सब के चेहरे उतर गए थे।

इतने में राज-वैद्य ने आकर रानी को दवा दी। कुछ देर बाद रानी को होश आया। तब राजा को भी धीरज हुआ। तब राज-वैद्य ने पूछा कि बात क्या हुई। राजा ने कहना शुरू किया-"मैं रोज की तरह दासियों के साथ तीनों लड़कियों को लेकर बाग में सैर कराने गया। आप तो जानते ही हैं कि इन चार बरसों में लड़कियों के सिर पर कैसी कैसी बलाएँ आईं। इसीलिए में इतना सावधान रहता हूँ। इसीलिए मैं लड़कियों को महल से बाहर ले जाने के पहले एक सौ नौकरों को उनके साथ कर देता हूँ। आज भी बाग में एक सौ नौकर चारों ओर पहरा दे रहे थे और में दासियों के साथ लड़कियों को लेकर बीच में टहल रहा था। इतने में न जाने कहाँ से एक बड़ा बवण्डर आया। एक पल में



चारों ओर से धूल उठी और आसमान में अन्धेरा छा गया। हम सब ने डर के मारे आँखें मूँद लीं। जब मैंने फिर आँखें खोली तो देखा कि तीन गिद्ध आए और मेरी तीनों लड़कियों को उठा ले गए।" यों राजा और भी कुछ कहने जा रहा था कि रानी फिर बेहोश होकर गिर पड़ी।

दासियाँ घबरा कर उनकी ओर दौड़ीं। थोड़ी देर बाद रानी को फिर होश आया। तब राजा ने फिर कहना शुरू किया-"यह सब एक पल में हो गया। दूसरे ही क्षण मैं अपने नौकरों और दासियों के साथ गिद्धों का पीछा करने लगा।

लेकिन आदत न होने के कारण में थोड़ी दूर चलने में ही थक गया। इसलिए धीरे धीरे चलने लगा।

मेरे नौकर चाकर बहुत दूर तक गिद्धों के पीछे दौड़ते रहे। लेकिन गिद्ध उड़ते-उड़ते आसमान में गायब हो गए और नौकरों को निराश होकर खाली हाथ लौटना पड़ा।

उनको लौटते देख कर मेरे भी पैर मानों धरती में गड़ गए और मैं वहीं खड़ा रह गया। इतने में एक और अचरज हुआ। मेरे नौकर और तीनों दासियाँ थोड़ी दूर जाने पर चिड़ियाँ बन गए और गिद्धों के पीछे वे भी आसमान में उड़ गए।

यह सब देख कर मेरा हृदय बहुत ब्याकुल हो गया। मैंने सोचा कि भगवान न जाने, क्यों हमें ऐसे कष्ट दे रहे हैं और कितने दिन तक हमें यों कष्ट भोगना होगा।" इतना कह कर राजा फिर रोने-पीटने लगा।

इधर राजा के महल में जो उथल-पुथल मची, उसकी खबर राजा के ज्योतिषी के पास पहुँची और वह दौड़ा आ पहुँचा।

ज्योतिषी को देखते ही रानी रोती-कलपती उसके पैरों पर गिर पड़ी और बोली-"उस दिन आपने बहुत समझाया था। लेकिन हम अपनी लड़कियों की रक्षा न कर सके। वे हमारी आँखों से ओट हो गई। पोथी-पत्रा देख कर एक बात बताइए। वे जिन्दा है या नहीं जब तक यह मालूम न हो जाएगा, तब तक हमको चैन न मिलेगा।" यह कह कर वह रोने लगी।

ज्योतिषी ने फिर एक बार लड़कियों की जन्म कुण्डलियाँ देखी और गुन-गुन कर रानी से कहा-

"ज्योतिष शास्त्र तो कहता है कि लड़कियाँ मजे में है। उन पर अभी कोई सङ्कट नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह सब कैसे हो गया। मैं यह तो नहीं बता सकता कि



लड़कियों अभी कहाँ हैं। लेकिन इतना दावे के साथ कह सकता हूँ कि वे सकुशल हैं। सिर्फ लड़कियाँ ही नहीं उनके साथ जो दास-दासियाँ हैं, वे सब भी कुशल से हैं।

यह भी निश्चय है कि तीन साल के अन्दर कभी न कभी आपको अबश्य मिल जाएँगे। इसलिए भगवान पर भरोसा करके धीरज रखिए और मिलन की राह देखिए। इसके सिवा हमारे हाथ में और है ही क्या ?" ज्योतिषी ने रानी को ढाँढस बँधाया।



पढ़ने वाले समझ ही गए होंगे कि राजा झूठ-मूठ ढोङ्ग करता आया था और उसने रानी को जो लम्बी-चौड़ी कहानी कही, वह भी उसकी मनगढ़न्त थी। राजा को मालूम या कि रानी जरूर लड़कियों और दास-दासियों के बारे में सवाल करेगी। इसलिए उसने यह आकाश पाताल का कुलाबा मिलाया। सुरङ्ग की बात वह रानी को बता देता। लेकिन उसे सन्देह था कि धीरे धीरे कहीं यह बात फैल न जाए और लड़कियों को निगलने की ताक में बैठी हुई दुष्ट शक्ति को कहीं मालूम न हो जाए।

अपनी लाडली बेटियों की जान बचाने के लिए राजा ने इतनी बड़ी कहानी गढ़ ली। राजा की बात का भोली रानी ने विश्वास कर लिया। राज-महल के दूसरे लोगों ने भी उसकी बातें सच मान लीं। हाँ ज्योतिषी की कृपा से एक बात हुई। लड़कियों को जिन्दा जान कर रानी के मन में कुछ तसल्ली हो गई। रानी ने यह सोच कर सन्तोष कर लिया कि लड़कियाँ जिन्दा तो हैं; यही मेरे लिए काफी है। पर उसने राजा से अनुरोध किया कि वह राज में चारों ओर दूतों को भेज कर उनका पता लगाए ।

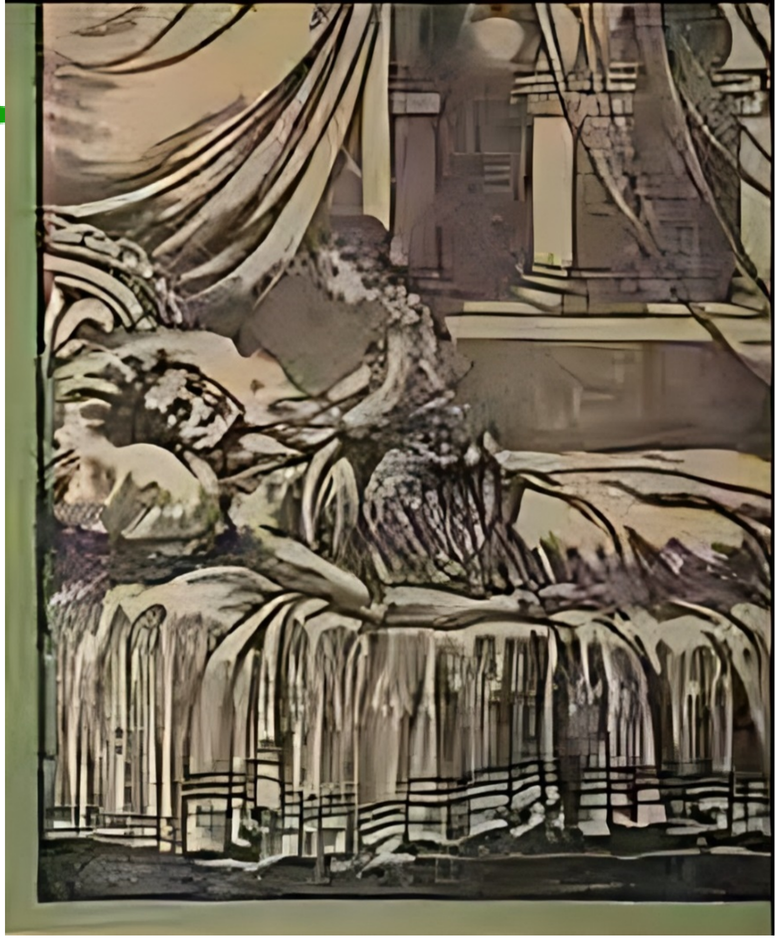
राजा तो सब कुछ जानता ही था। फिर भी रानी को सन्तोष देने के लिए उसने राज्य में चारों ओर दूत भेज दिए। राजा के दूत घोड़ों पर चढ़ कर चले और सारे राज्य में घूम आए। लेकिन लड़कियाँ जमीन पर तो थी नहीं कि दूतों को उनका पता चलता। वे तो सकुशल जमीन के

अन्दर थी। इसी से जितने दूत उन्हें खोजने गए थे सब अपना सा मुँह लेकर लौट आए। इस तरह ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए त्यों-त्यों रानी की घबराहट बढ़ती गई।

लेकिन राजा खुश था कि राजकुमारियाँ तो ऐसी जगह सुरक्षित हैं कि उनका पता देवताओं को भी नहीं चल सकता। लेकिन ऊपर से वह भी बहुत शोक प्रगट करता था। देखने वालों को ऐसा लगता था कि राजा भी लड़कियों की चिन्ता में घुला जा रहा है। लेकिन वह रोज किसी न किसी समय गुप्त रूप से मुरङ्ग में जाता और लड़कियों को

देख आता था । लड़कियों को सुरक्षित और हँसी-खुशी से रहते देख कर उसकी सारी चिन्ता दूर हो गई।

इस तरह एकाध महीना बीता। लेकिन अब राजा के मन में एक भारी सन्देह उठा। बात यह हुई कि लड़कियों को देखे बिना उसे एक दिन भी चैन नहीं पड़ती थी। लेकिन



इस तरह सब की आँख बचा कर रोज सुरङ्ग में आना-जाना तो कोई आसान काम नहीं था।

अगर किसी ने उसे इस तरह आते जाते देख लिया तो ! तब तो सारा भण्डा ही फूट जाएगा। धीरे धीरे सुरङ्ग की बात सबको मालूम हो जाएगी और उसका किया-कराया सब मिट्टी में मिल जाएगा। अगर यह बात किसी तरह दुष्ट-शक्ति को मालूम हो गई तब तो जान पर ही आ बीतेगी। इस चिन्ता में पड़ कर राजा दिन-दिन घुलने लगा। बहुत दिमाग उड़ाने पर भी



उसे दूसरा कोई उपाय न सूझा। इस तरह कुछ दिन और बीत गए।

एक दिन की बात है कि राजा चुपचाप छड़कियों को देख आया था। सब सकुशल थीं। राजा चैन से सो रहा था। अमानक गाढ़ी नींद में उसे ऐसा लगा जैसे कोई थपकी देकर उसे जगा रहा है। राजा हड़बड़ा कर उठ बैठा। लेकिन अपनी आँखों पर आप ही विश्वास न हुआ जब उसने देखा कि जगाने वाली उसकी लाड़ली बिटिया सुहासिनी थी।

कुछ क्षण राजा ने सोचा कि वह सपना देख रहा है। लेकिन जब वह लड़की उसकी बगल में बैठ गई और हँसती-खेलती उससे बातें करने लगी तो राजा घबरा उठा। उसने सोचा कि यह सपना कैसे हो सकता है ? सुहासिनी तो मुझे छू रही है और में उसकी तोतली बोली सुन रहा हूँ।

वह सुहासिनी को छाती से लगा कर कहने लगा-"बेटी ! यह क्या ? तू यहाँ कैसे आ गई ! कहाँ गई वे दासियों ! नौकर- चाकर सब कहाँ चले गए ? आधी रात के के वक़्त तुम अकेली यहाँ कैसे आ गई ? मैं तो दङ्ग हूँ देख कर !" अचरज और दहशत के मारे राजा हजारों सवाल पूछने लग गया।

सुहासिनी थोड़ी देर तक कुछ न बोली । फिर पिता का हाथ पकड़ कर उसने पलङ्ग से नीचे उतारा। दीवार पर लटकती हुई एक तस्वीर के पास खींच ले गई और बोली "देखते हैं यह तस्वीर ? इसी में से आई हूँ।"

लेकिन राजा की समझ में कुछ न आया। उसने कहा -"बिटिया में पूछ रहा हूँ कि तू यहाँ कैसे आई। तू तस्वीर की और उँगली क्यों उठा रही है ! क्या तु यह तस्वीर लेना चाहती है? मैं तुझे ऐसी बहुत सी तस्वीरें लाकर दूँगा। पर पहले यह तो बता दे कि तू यहाँ आई कैसे !" राजा ने बार-बार पूछा।

"वही तो बता रही हूँ पिताजी। उसी तस्वीर में से आई हूँ।" लाड़ली सुहासिनी ने कहा। राजा ने तस्वीर को यहाँ से हटाया तो हक्का-वक्का खड़ा रह गया। काटो तो शरीर में खून नहीं। बात यह थी कि तस्वीर जहाँ लटक रही थी, वहाँ दीवार में एक बड़ा सुराख उसे दिखाई दिया। तुरन्त राजा सुहासिनी को लेकर उस सुराख में घुस गया।

कुछ दूर टटोलते जाने पर उसे मालूम हुआ कि यह एक सुरङ्ग है। वह लड़की को गोद में उठाये बड़ी सावधानी से टटोलते हुए आगे बढ़ने लगा। राजा आधी दूर गया था कि सुहासिनी



को खोजती हुई उसकी दासी जाती दीख पड़ी। सुहासिनी जिस समय अपने कमरे से गायब हुई, बेचारी दासियाँ सो रही थीं। लेकिन थोड़ी देर बाद जब वे अचानक जग गई और देखा कि सुहासिनी की खाट खाली है, तो घबरा कर वे उसे खोजने चलीं। वह दासी सुरङ्ग में भटकती हुई बहुत दूर तक चली आई।

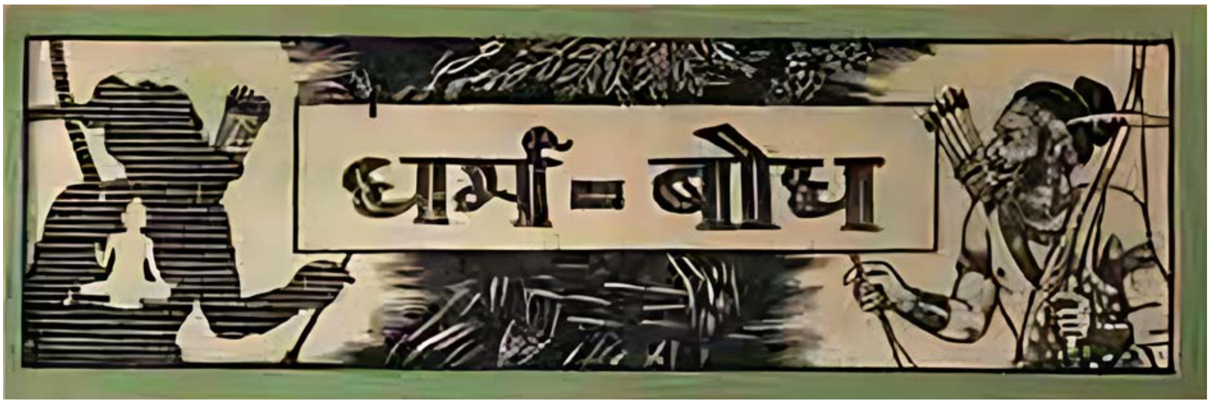
राजा को बेटी के साथ आते देख कर उसकी जान में जान आई। तीनों अचरज के साथ सुहासिनी के कमरे की ओर दौड़ चले।

लेकिन यह क्या ? मुहासिनी के कमरे का दरवाजा कहाँ ? यह देख कर राजा और दासी घबरा गए। उन्हें शक हुआ कि कहीं वे इस सुरङ्ग की राह तो नहीं भूल गए !

यह सोच कर राजा ने दासी को मुहासिनी के साथ वहीं खड़े रहने को कहा और खुद लौट कर पीछे चला। यह देखना चाहता था कि यह एक ही सुरङ्ग है या कई । आखिर तक जाने पर उसे मालूम हुआ कि एक ही सुरङ्ग है। क्योंकि राजा अपने कमरे तक पहुँच गया था। अब राजा बहुत डरा और चिन्ता में डूबा हुआ फिर उस जगह लौटा जहाँ वह दासी और राजकुमारी को छोड़ गया था। लेकिन लौट कर देखता क्या है कि दासी और सुहासिनी का वहीं नामो-निशान नहीं। यह देख कर राजा पागल सा हो गया। वह मुट्ठी बाँधे सुरङ्ग में दौड़ने लगा।

[राजा के मन में क्या सन्देह हुआ? पग-पग पर ये उलझनें कैसी ? दासी और सुहासिनी कहाँ गई? क्या राजा उनका पता पा सका ? आदि बातें अगले अङ्क में पढ़िए।]





भगवान बुद्ध का जिस काल में अवतार हुआ था, उसी समय एक ब्याध रहता था। वह बड़ा दी चलवान था। साथ ही उसका निशाना भी अचूक था। इसलिए उसे अत्यन्त गर्व था कि उसके समान शिकारी संसार में दूसरा कोई नहीं है। सबेरे से शाम तक आखेट करना ही उसका काम था। शिकार करना उसके लिए सिर्फ पेट के लिए नहीं था। शिकार खेलने में उसको आनन्द आता था। अपने निशाने से घायल होकर प्राण छोड़ते हुए मृग को देख कर उसे अपूर्व आल्हाद होता था।

करुणाशील बुद्ध को जब उस ब्याध की क्रूरता का समाचार मिला तो उन्होंने उसे सुधारना चाहा। लेकिन वे उसे उपदेश देकर ही चुप हो जाना नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि उस व्याध को सद-धर्म का बोध हो जाए।

एक दिन वह ब्याध रोज की तरह जङ्गल में शिकार खेलने गया। भगवान बुद्ध भी ब्याध के वेश में उसी जङ्गल में गए। दोनों का सामना हुआ।

"कौन हो तुम " ब्याध ने कर्कश स्वर में डाँट कर पूछा।

“मैं भी एक शिकारी हूँ। मेरा नाम है शवर।" बुद्ध ने कहा।

व्याध को क्रोध तो था ही। यह सुन कर अचरज भी हुआ। "यह मेरे राज्य में क्यों आया है!" उसने सोचा। "शिकारी के लिए सिर्फ मोटी-ताजी देह ही नहीं, फुर्ती और हस्तलाघव भी चाहिए। मैं चौकड़ी भरते हुए हिरन पर आसानी से निशाना साध सकता हूँ। क्या तुम में यह कौशल है?" ब्याध ने शवर से पूछा।

उस नए शिकारी ने मुसकुराते हुए जवाब दिया -"एक की क्या बात? में तो



तब उस नए शिकारी ने कहा- "अटकल खूब लगाते हो! पहले मुझे निशाना तो लगाने दो। फिर तुम फुरसत से गिनते रहना।" यह कहकर उसने निशाना लगा कर एक बाण मारा। वह बाण एक-एक करके सभी हिरनों को छेद गया और वे सभी उलट उलट कर जमीन पर गिर पड़े। तब बुद्ध ने कहा-"अब जाकर तुम गिन आओ ! आते वक्त एक हिरन को उठा लाना। चार दिन के लिए वह काफी होगा।"

एक तीर में सैकड़ों हिरनों का शिकार कर सकता हूँ।"

"अरे! मेरे सामने ऐसी डीङ्ग मत हाँको।" यह कह व्याध हँसने लगा।

"हँसते क्यों हो ! आँखों से देख लो न!" यह कह कर शवर ने ब्याध को अपने पीछे आने को कहा। थोड़ी दूर जाने पर हिरनों का एक बड़ा झुण्ड दिखाई पड़ा। ब्याध दस-पन्द्रह साल से इस जङ्गल में शिकार कर रहा था। लेकिन उसने हिरनों का इतना बड़ा झुण्ड कभी नहीं देखा था। इसलिए उसने कहा-“बाह ! कितना बड़ा झुण्ड है। सौ से भी ज्यादा होंगे।"

ब्याध ने जाकर हिरनों को गिना। पूरे पाँच सौ निकले। “एक तीर से इसने पाँच सौ हिरनों को मार लिया। यह तो बड़ा भारी मायावी जान पड़ता है। यह कोई मामूली ब्याध तो नहीं है।" यह सोच कर ब्याध ने एक हिरन को कन्धे पर उठा लेना चाहा। लेकिन वह बहुत भारी था। उसके उठाए न उठा।

व्याध बड़ा बलवान था। भारी से भारी शिकार को वह ऐसे ही उठा लेता था। लेकिन आज एक मामूली हिरन उस के उठाए न उठ रहा था। इसमें क्या रहस्य था ? उसने एक दूसरे हिरन पर अपनी

ताकत आजनाई। लेकिन वह भी उससे न उठा। आखिर वह हाथ डुलाते लौट आया।

शवर के सामने आते ही वह उस अद्‌भुत शिकारी के पैरों पर गिर पड़ा और बोला-"भाई, तुम तो कोई मामूली आदमी नहीं जान पड़ते हो। एक ही तीर से तुमने पाँच सौ हिरनों का शिकार कर लिया। मुझे भी वह कौशल सिखा दो जिसके कारण तुम इतने चतुर बन गए हो !"

यह सुन कर भगवान ने कहा-"अच्छा! मैं तुम्हें वह कौशल बता दूँगा। लेकिन वह सीखने के लिए पहले तुम्हें कम से कम एक मास तक माँस न खाना होगा। सिर्फ़ फल खाकर रहना होगा। किसी जीव को कोई कष्ट नहीं पहुँचाना होगा। इस तरह अगर तुम एक मास तक नियम-पूर्वक रहोगे, तो मैं तुम्हें वह कौशल सिखा दूँगा।"

ब्याध ने शर्त मञ्जूर कर ली। एक महीने के बाद आने का वादा करके माया-ब्याध चला गया।

व्याघ जो माँस खाकर ही रहता था, अब भारी दिक्कत में पड़ गया। कुछ दिन तो यह नियम कठिन जान पड़ा। इतना ही नहीं; धनुष-बाण दीवार पर टाँग कर उसे दिन भर यों



ही मन मारे बैठे रहना पड़ता था। वह भी कोई आसान बात न थी। लेकिन वह था बात का बड़ा पक्का आदमी। इसलिए उसने अपनी टेक न छोड़ी। धीरे-धीरे जब उसे फल खाने की आदत हो गई तो उसने सोचा-"मनुष्य माँस खाए बिना भी जी सकता है। फिर वह नाहक जीव की इत्या क्यों करता है ?" इस तरह व्याध का मन बदलने लगा। घायल होकर तड़पते पशुओं के चित्र उसकी आँखों के आगे नाचने लगे। "मैंने क्यों अकारण इतने जीवों को मारा था ?" यह सोच कर वह बहुत पछताने लगा। तब से उसके मन में हिंसा से घृणा

पैदा हो गई। देखते-देखते यह ब्याध सन्त बन गया।

एक महीना खतम होते ही बुद्ध-देव ब्याध-रूप में उसके पास जा खड़े हुए। "क्या तुम वह कौशल सीखना चाहते हो ?" उन्होंने पूछा।

ब्याध ने काँपते हुए जवाब दिया-"नहीं। अब मैं वह कौशल नहीं सीखूँगा। मैंने अब तक बहुत पाप किए हैं। अब वह कौशल सीख कर पापों का पहाड़ खड़ा नहीं करना चाहता।" यह कह कर उसने आन्तरिक अनुताप प्रगट किया।

यह देख कर बुद्ध ने अपना असली रूप दिखाया और कहा-"हे भाई! तुम बच गए। अब कोई सोच न करो। लेकिन अपना ब्रत कभी न छोड़ना।"

ब्याध ने भगवान के पैरों पड़ कर कहा-"भगवन् ! उस दिन में नहीं जान सका कि मेरे हृदय में करुणा जगाने के लिए ही आपने ब्याध के रूप में मुझे दर्शन दिया था। लेकिन मेरी एक बात का जवाब दीजिए ! उस दिन आपने जो पाँच सौ हिरन मारे थे, मैं उनमें से एक को भी न उठा सका था। इसमें रहस्य क्या था !"

भगवान ने जवाब दिया-"वत्स ! यह भी कोई प्रश्न है ! हम रोज लाखों जीवों को मार सकते हैं। लेकिन एक को भी उठा नहीं सकते। मनुष्य मार सकता है। लेकिन जिन्दा नहीं कर सकता। मैंने यही तुम्हें जताने के लिए उस हिरन को उतना भारी बना दिया था। मनुष्य में प्राण देने की शक्ति नहीं है। इसीलिए उसे प्राण लेने का अधिकार भी नहीं। इसी से जाना जा सकता है कि हिंसा करना कितना मारी पाप है।" ब्याध को इस तरह मुक्ति का मार्ग दिखा कर भगवान अन्तर्धान हो गए।





मोहन लाल पहली बार काशी जा रहे थे। गाड़ी पर चढ़ते ही उन्हें चिन्ता हो गई कि "काशी जाकर में ठहरूँगा कहाँ ?" उनके डिब्बे में जो मुसाफिर थे उनमें काशी जाने वाला कोई न था। मोगलसराय स्टेशन पर मोहन माल की एक आदमी से जान-पहचान हो गई।

उसने कहा-"आप घबराइए नहीं। मेरा एक दोस्त काशी में रहता है। में आपको उसके घर छोड़ दूँगा।"

काशी पहुँचने पर एक मोटर पर चढ़ कर दोनों चल दिए। थोड़ी देर में मोटर एक बड़े महल के सामने जाकर रुकी। तब उस आदमी ने कहा-“यही मेरे दोस्त का महल है। आप सीधे अन्दर चले जाइए। कोई फिक नहीं। मुझे जरा काम है। इसलिए जरा में दूसरी जगह जा रहा हूँ।"

मोहन लाल ने पाँच रुपए का नोट निकाल कर उस आदमी को दिया और कहा-"मोटर का किराया दे दीजिए।"

उस आदमी ने वह नोट लेने से इनकार कर दिया और चला गया। मोहन लाल ने मन ही मन उस आदमी को धन्यवाद दिया और अपने भाग्य को सराहते हुए, पेटी और बिछौना उठा कर अन्दर चले।

एक दाढ़ी वाला जो एक साधू सा जान पड़ता था, आगे आया और बोला-"आइए। पधारिए!" आव-भगत के साथ वह उन्हें अन्दर ले गया।

मोहन लाल ने अपना सब हाल कह कर उस आदमी का भी नाम-ठिकाना बता दिया जो उसे मोटर पर यहाँ तक पहुँचा गया था। फिर कहा "मैं आपका नाम पूछना तो भूल गया।"

"मेरा नाम तो रामनाथ है। लेकिन लोग प्राय: मुझे 'लोकोद्धारक' कह कर



पुकारते हैं। जो लोग दूर-दूर से आते हैं, उनकी सहायता करना ही मेरा काम है। इसीलिए लोगों ने प्रेम-वश मेरा यह नाम रख दिया है।" उस आदमी ने कहा।

उसके बाद उस लोकोद्धारक ने मोहन लाल को एक लम्बे-चौड़े कमरे में ले जाकर कहा-"आप अपना सामान इस कमरे में रख लीजिए।" मोहन लाल ने 'ताले' का नाम लिया ही था कि लोकोद्धारक हँस कर कहने लगा-"मेरे पर में ताले-कुञ्जी की कुछ जरूरत नहीं। में अपना घर हमेशा खुला खुला ही रखता हूँ। लेकिन आज तक मेरे घर से एक तिनका भी चोरी नहीं गया है। हाँ, भापकी इच्छा हो तो शाम को बाजार से ताला खरीद कर ले आइए और अपने कमरे में लगा दीजिए। तब तक अपनी पेटी का ताला निकाल कर लगा लीजिए।" उसके बाद खा-पीकर दोनों ने आराम किया। जब साँझ हो गई तो दोनों शहर में घूमने चले। मोहन लाल ने सन्दूक का ताला कमरे में लगा दिया था। लेकिन लोकोद्धारक के बाकी सभी कमरे खुले ही थे। शहर में दोनों खूब घूमते रहे। उसके बाद ताला खरीदने गए। एक मजबूत ताला खरीद लिया और दोनों घर लौटे।

घर में सब चीजें ज्यों-की-त्यों थीं। मोहन लाल ने सोचा-"लोकोद्धारक का कहना सच है।" उस घर में मोहन लाल को सब तरह की सुविधाएँ थीं। किसी चीज़ की तकलीफ न थी। मोहन लाल की जेव से एक पाई भी खर्च न हुई। सारा खर्च लोकोद्धारक ही कर रहा था। यह देख कर मोहन लाल को बेहद खुशी हुई।

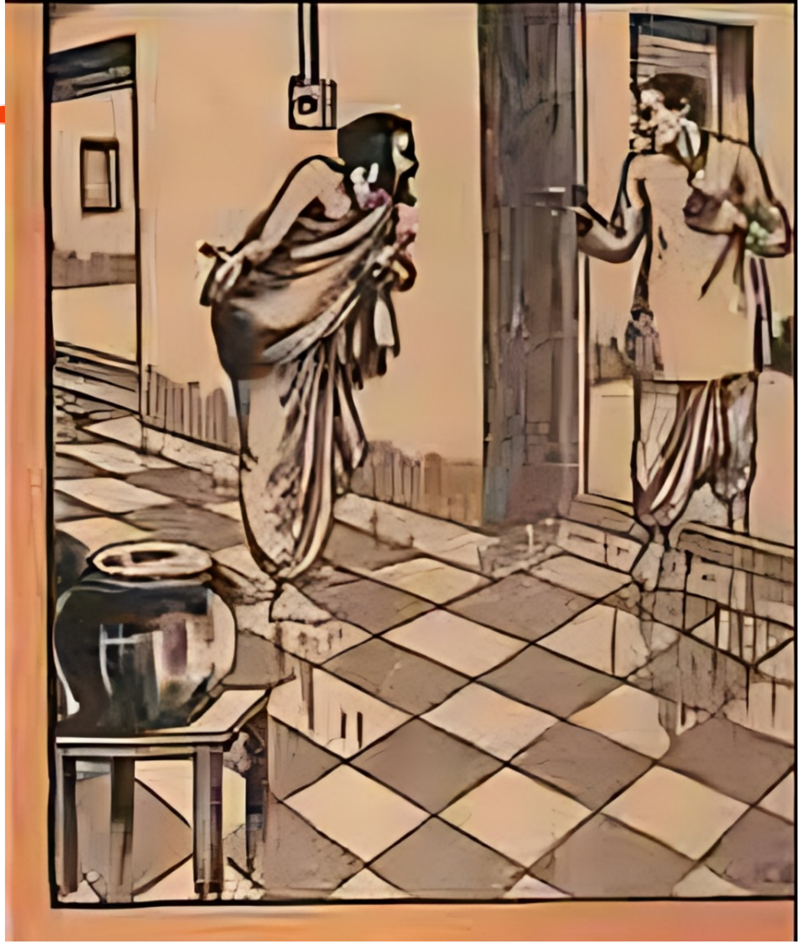
इस तरह दिन जल्दी-जल्दी बीतते गए । घर लौटने के एक दिन पहले मोहन लाल लोकोदारक से कहने लगे-“लोकोद्धारकजी। में आपका एहसान कभी नहीं भुला सकता।

आपने जो मेरी मदद की, जो उपकार किया उसके बदले .... " यह और भी कुछ कहने जा रहा था कि लोकोद्धारक ने टोक कर कहा- "आप मेरे प्रेम का मूल्य क्या रूपए से लगाना चाहते हैं ! माफ कीजिए। मैं रुपए का लालची नहीं हूँ। मेरा तो ध्येय है दूसरों की भलाई करना।"

"क्षमा कीजिए। मैं सात दिन तक आपके साथ रह कर भी आपका स्वभाव न समझ सका। मैंने रुपए की बात चला कर आपके मन को कष्ट दिया। लेकिन आप मेरी एक बात सुनिए ! आप रुपए लीजिए और दूसरों की भलाई में खर्च कर दीजिए।" यह कह कर उसने सौ रुपए का एक नोट देना चाहा।

"मैं तो रुपए हाथ से छूता भी नहीं। आप देना ही चाहते हैं तो उस डिब्बे में डाल दीजिए।" यह कह कर लोकोद्धारक ने एक डिब्बा दिखा दिया।

मोहन लाल ने सौ रुपए उस डिबिए में डाल दिए। उस शाम को दोनों फिर विश्व नाथ के दर्शन करने गए और अन्धेरा होने पर पर लौट आए। मोहन लाल ने अपने कमरे का ताला खोला तो कमरा देख कर हक्का-बक्का रह गया। पेटी खुली पड़ी थी।



कपड़े सब ज्यों-के-त्यों थे। लेकिन रुपए गायब। और इतने में लोकोद्धारक कमरे में आया पूछने लगा-"कुछ खो गया है क्या ?"

"हाँ, कपड़े-लत्ते तो ज्यों-के-त्यों हैं। लेकिन रुपया सब गायब है। सबसे अचरज तो यह है कि कमरे का ताला लगा ही हुआ था।" मोहन लाल ने कहा।

"क्या कहा ? ताला लगा ही हुआ था ! न जाने कैसे घुस गए ! रसोई-घर में हाँडियाँ भी फोड़ गए हैं वे बदमाश। इतने दिनों से इस घर में रहता आया हूँ। लेकिन आज तक कभी एक भी चीज नहीं खोई थी। अपने लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं है।

लेकिन आपके रुपये के लिए तो मुझे बेहद दुख हो रहा है।" लोकोद्धारक ने बहुत दुखी होकर कहा।

"इसमें आपका क्या दोष है ! मेरा भाग्य ही अच्छा न था। मेरी वजह से आपकी भी चीजें चली गई। अब बताइए क्या करूँ ? क्या पुलिस में रिपोर्ट कर दूँ ?" मोहन लाल ने पूछा।

"रिपोर्ट करने से क्या फायदा ? जो रूपया गया सो तो गया ही। बेकार की हैरानी और परेशानी ऊपर से। मैं तो रिपोर्ट नहीं करूँगा। क्योंकि यह मेरे सिद्धान्त के खिलाफ है। हाँ, अब यह सोचना है कि आप घर कैसे पहुँचेंगे! हाँ, तो उस दिन आपने डिब्बे में सौ रुपए डाल दिए थे, वे ले लीजिए।" यह कह कर लोकोद्धारक सौ रुपए देने लगा।

लेकिन मोहन लाल ने कहा-"सौ रुपए क्या करूँगा ? रेल खर्च भर के लिए दे दीजिए। बाकी अपने पास रखिए।"

"आपकी जैसी इच्छा!" यह कर लोकोद्धारक ने चालीस रुपए निकाल कर मोहन लाल को दिए। मोहन लाल उसी रात को घर चल दिए।

* * * * * *

एक साल बीत गया। एक दिन सबेरे मोहन लाल अपने घर में बैठे अखबार पड़ रहे थे कि उन्हें एक कोने में एक सनसनीखेज खबर दिखाई दी। बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था-"काशी के यात्रियों को धोखा देने बाला लोकोद्धारक गिरोह गिरफ्तार। लोकोद्धारक को तीन साल की कड़ी सजा। पूरी खबर पढ़ने के बाद मोहन लाल को मालूम हुआ कि उसकी रेल के डिब्बे में जिस आदमी से जान-पहचान हुई थी वह तालों का दूकानदार, और भी कुछ लोग उस गिरोह में शामिल थे और उनका नेता 'लोकोद्धारक' था। जब यह बात उनके घर वालों को मालूम हुई तो सब लोग हँसने लगे।





दिल्ली के बादशाह अकबर के समय में हस्तिनापुर में तुलसीदास नामक एक सन्त रहते थे। वे रोज नजदीक के एक गाँव में बाकर रामायण बाँचा करते थे। वे बड़े पण्डित, कवि और भक्त थे। इसलिए उनकी कथा में बहुत से लोग जमा होते थे। कथा सुनने वालों में एक बूढ़ा ब्रह्मचारी भी था जो कथा-स्थल में सबसे पहले जाता था। एक फटा-पुराना अङ्गोछा उसके बदन पर होता। वह बड़ी श्रद्धा से क्या सुनता।

तुलसीदास ऊँची आवाज से कथा कहते जिससे सब कोई सुन सकें। इसलिए बार-बार उनका गला सूख जाता और बार-बार वे पानी पीते थे।

बूढ़ा ब्रह्मचारी एक लोटे में पानी भर लाता और बड़ी नम्रता से तुलसीदास जी के सामने रख देता। रोज आधी रात तक वे कथा कहते। फिर रामायण और लोटा लेकर हस्तिनापुर लौट जाते थे। बीच में एक पीपल का पेड़ पड़ता था। लोटे का बचा-खुचा पानी तुलसीदास जी उस पीपल के पेड की जड़ में डाल देते थे। बहुत दिन तक ऐसा ही होता रहा। एक दिन तुलसीदास जी लोटे का पानी पीपल की जड़ में डाल कर चले ही थे कि किसी ने पीछे से पुकारा-"बेटा जरा ठहर जाओ।"

उस निर्जन प्रदेश में रात के वक्त यह शब्द सुन कर तुलसीदासजी को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने सोचा- "कौन पुकारता है मुझे ?" इतने में एक ब्रम्ह-राक्षस पीपल के पेड़ से नीचे उतरा और उन के सामने आकर खड़ा हो गया।

ब्रम्ह-राक्षस को देख कर तुलसीदास जी डर गए। लेकिन ब्रम्ह-राक्षस ने मीठे शब्दों में कहा- "बेटा ! डरो मत! मैं भी एक समय तुम्हारी ही तरह एक बड़ा पण्डित था।



लेकिन अनेकों बुरे कर्म करके लोगों को मैंने बहुत कष्ट दिए। इसी से मुझे ब्रम्ह-राक्षस होना पड़ा। खैर, मेरी बात जाने दो। बोलो, तुम मुझसे क्या चाहते हो !" तुलसीदासजी ने चकित होकर कहा-"मुझे तो कुछ नहीं चाहिए । लेकिन आप मुझ पर यह कृपा क्यों दिखा रहे हैं !"

"ऐसा न सोचना कि मैं अकारण तुमसे प्रसन्न हो गया हूँ। मैं प्यास के मारे परेशान था। लेकिन जब से तुम इस पेड़ में पानी डालने लगे, मेरी प्यास मिट गई। यों में तुम्हारा कृतज्ञ हूँ और बदले में कुछ भलाई करना चाहता हूँ।" वह राक्षस कहने लगा।

तुलसीदास ने कहा-"भगवन्! मैं राम का भक्त हूँ। बहुत दिनों से राम-नाम जपता आया हूँ। राम का गुणगान करके अपना जीवन बिता रहा हूँ। लेकिन अभी तक मुझे राम-दर्शन नहीं हुए। मेरी और कोई इच्छा नहीं। सिर्फ एक बार राम का दर्शन हो जाए। इसके सिवा मुझे और कुछ नहीं चाहिए।" तुलसीदास ने अपने मन की बात कह दी।

उनकी यह बात सुन कर ब्रम्ह-राक्षस थोड़ी देर तक चुप रह गया, कुछ नहीं बोला। आखिर उसने मुँह खोला-"बेटा ! तुमने बहुत अच्छी बात कही। लेकिन यह तो मेरी शक्ति के बाहर की बात है। पर मैं एक उपाय तुम्हें बता सकता हूँ। मैं एक ऐसे आदमी का पता दूँगा, जो तुम्हें रामजी के दर्शन करा सकता है। तुम उस आदमी को कथा स्थल पर रोज देखते हो।"

"कौन हैं वे महात्मा ?" तुलसीदास ने व्याकुल होकर पूछा।

"तुम कथा बाँचते हो, तब बीच-बीच में तुम्हें एक बूढ़ा पानी लाकर देता है न ! हाँ, जानते हो! वह बूढ़ा कौन है ! वह और कोई नहीं, श्रीरामचन्द्र का प्रिय भक्त हनुमान है।" ब्रम्ह-राक्षस ने कहा।

यह बात सुन कर तुलसीदास को बड़ा आनन्द हुआ। वे ब्रम्ह-राक्षस के चरणों में पड़ गए। आश्चर्य ! तुलसीदास का स्पर्श होते ही ब्रम्ह-राक्षस का शाप छूट गया। वह एक दिव्य देह धारी गन्धर्व बन गया।

"भक्त-राज ! आपके स्पर्श से मुझे फिर अपना रूप मिल गया। कितना भाग्यशाली हूँ मैं। आपका यह ऋण में कैसे चुका सकूँगा ! लेकिन मुझे विश्वास है कि आपको शीघ्र ही रामचन्द्र के दर्शन होंगे। अब मुझे विदा दीजिए !" यह कह कर वह गन्धर्व तुलसीदास जी का गुणगान करता हुआ चला गया।

दूसरे दिन तुलसीदास जी कथा बाँचने लगे। लेकिन उनका सारा ध्यान एक कोने में बैठे हुए उस बूढ़े ब्रह्मचारी पर लगा हुआ था। इसलिए उन्होंने उस दिन जल्दी ही कथा खतम कर दी।

सब लोग चले गए। वह बूढ़ा ब्रह्मचारी भी जाते-जाते तुलसीदास के पास आकर बोला-"पण्डित जी ! आज आपने कथा जल्दी पूरी कर दी। क्यों, क्या तबीयत अच्छी नहीं है आज !"



तुलसीदास ने झट उनके पैर पकड़ लिए और कहा-"सच ही आज मेरी तबीयत अच्छी नहीं है। आपकी कृपा से ही वह ठीक होगी। आप ही मेरे राजवैध है। अब तक आप मेरे शरीर की प्यास मिटाते आए थे। जब मेरी आत्मा की प्यास भी बुझा दीजिए। राम-दर्शन के बिना मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। मुझे मालूम है कि आप कृपा करेंगे तो मुझे वह दुर्लभ घन प्राप्त हो जाएगा। भगवान आपकी इच्छा को टाल नहीं सकते, यह भी में खूब जानता हूँ।" यह कह कर तुलसीदास आँसू से उनके चरण धोने लग गए। हनुमान ने मन ही मन पुलकित होकर



हठात् आवाज आई-"क्यों तुलसीदास !अब मैं जाऊँ न !"

सीताजी ने कहा-"तुलसीदास, हमारी एक इच्छा है, तुम उसे पूरी करो।" तुलसीदास कृतार्थ भाव से सिर झुकाए खड़े रहे।

सीताजी भगवान की ओर देख कर कहने लगी-"देखो, भक्तवर! वाल्मीकि की रामायण संस्कृत में है। साधारण लोग उसे अब समझ नहीं सकते। तुम अपनी भाषा में ऐसी रामायण लिखो जिसे सब लोग सुगमता से समझ सकें।" इतना कहकर सब लोग अन्तर्धान हो गए।

सोचा "आज मेरा भाण्डा फूट गया।" उन्होंने मुस्कुरा कर कहा-"अच्छा जाओ ! भगवान के दर्शन तुम्हें होंगे।" यह कह कर हनुमान अन्तर्धान हो गए।

तुलसीदास जी पर गए और राम का ध्यान करने लगे। ध्यान करते-करते उनकी आँख झपक गई। आँख लगते ही उन्होंने देखा कि सीता और तीनों भाइयों के साथ श्रीराम उनके सामने आ खड़े हुए हैं। तुलसीदास के आनन्द का कोई ठिकाना न रहा। वे आँखें फाड़ कर उनका दर्शन करते रहे। उनके मुँह से बोली नहीं निकलती थी, परन्तु उनका रोम-रोम अमृत पान कर रहा था ।

तुलसीदास का स्वप्न टूट गया। वह सोचने लग गए। बस, उसी दिन से तुलसी दास ताड़ के पत्तों पर अपनी भाषा में रामायण लिखने लग गए। रामायण जैसा महा काव्य लिखने के लिए किसी पुण्य-स्थल की आवश्यकता थी। यह सोच कर तुलसीदास उस गाँव को छोड़ कर काशी चले गए।

काशी में बड़े बड़े पण्डित और ज्ञानी रहते थे। उन सबको तुलसी रामारण की बात मालूम हुई। कुछ लोगों ने तुलसीदास की बड़ी प्रशंसा की-"सरल जन-भाषा में

रामायण लिख कर तुलसीदास जनता का बहुत उपकार कर रहे हैं।"

लेकिन कुछ लोगों ने शिकायत भी की-"रामायण तो धर्म ग्रन्थ है। उसे तो संस्कृत में ही रहना चाहिए। ग्रामीण भाषा में लिखने पर तो वह अपवित्र हो जाएगी।" इस तरह कुछ ही दिनों में तुलसीदास का नाम देश में चारों ओर फैल गया।

एक दिन तुलसीदास अपने आश्रम में बैठकर कुछ लिख रहे थे कि एक दुखिया औरत ने आकर उन्हें प्रणाम किया। तुलसीदास ने बिना सिर उठाए ही आशीर्वाद दे दिया-“दीर्घ सुमङ्गली भव पुत्र-पौत्राभिवृद्धिरस्तु !" इतना कह कर वे फिर लिखने में निमग्न हो गए।

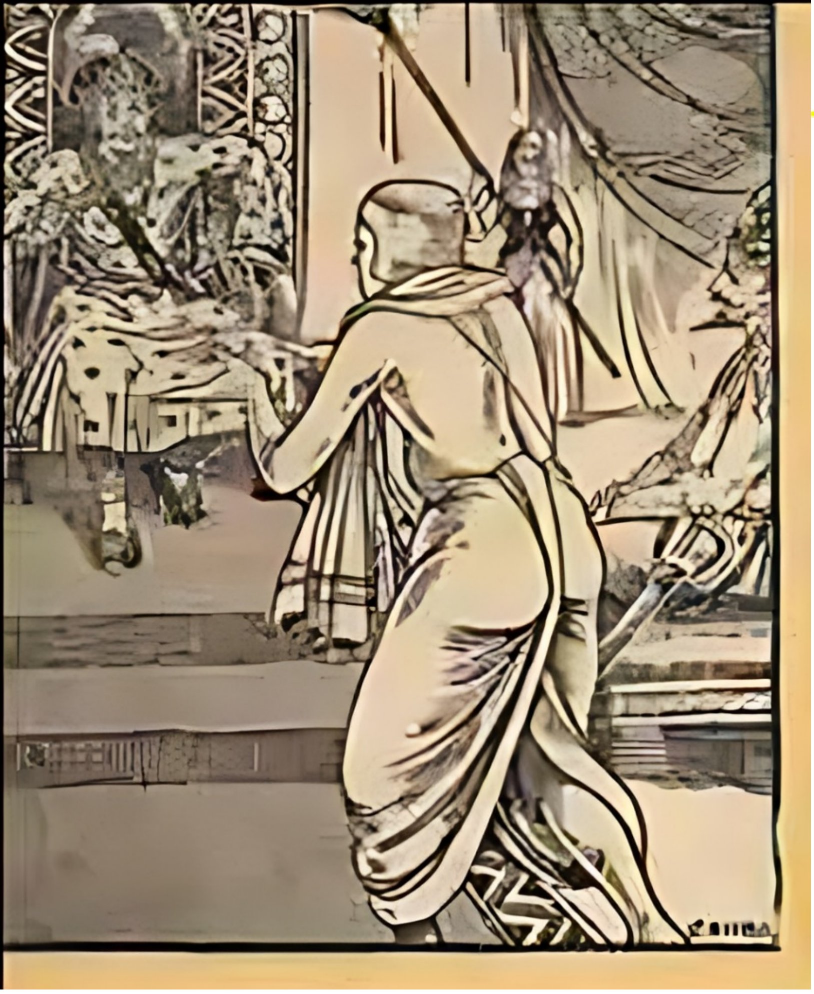
लेकिन वह औरत यह आशीर्वाद सुन कर खुश होने के बदले और भी सिसक सिसक कर रोने लगी। तब चकित होकर तुलसीदास ने सिर उठाया और पूछा-"माँ ! तुम क्यों रो रही हो !"

औरत ने बिलख कर कहा-"गोसाई जी ! आज सबेरे ही मेरे पति चल बसे। उनकी चिता रचाई जा रही है। में अपने यति की सहगामिनी होने



जा रही हूँ। आप का आशीर्वाद लेने आई थी। लेकिन आपने ऐसा आशीर्वाद दिया है कि..."

यह सुनकर गोस्वामीजी सन्न रह गए। कुछ क्षण बाद उन्होंने कहा-"माई ! नहीं जानता कि मेरे मुँह से यह आशीर्वाद क्यों निकला। जान पड़ता है, तुम्हारा सुहाग नमी समाप्त नहीं हुआ है। राम ने मेरे मुँह से जो बात निकाली है, यह झूठी तो हो नहीं सकती। यह तो उन्हीं की बात है। चलो, मैं उसे देखता हूँ। देखें भगवान की इच्छा क्या है।" यह कह कर तुलसीदास जी उस सहगामिनी के साथ गङ्गा के किनारे गए। चिता के पास बैठ कर उन्होंने राम



की प्रार्थना की-"भगवान! जिसकी चरण धूली शिला को दिव्य नारी का रूप दे सकती है, उसकी कृपा क्या इस सती का सुहाग नहीं लौटा सकती ! मेरे मुँह से तुम्ही तो बोले हो भगवन् ! फिर यह आशीर्वाद झूठा कैसे होगा !" इतना कहते-कहते चिता हिली और वह मुर्दा मनुष्य इस तरह उठ बैठा जैसे अभी नींद से जग गया हो।

यह देख कर भीड़ भौचक्का रह गई। सती और सजीव पति दोनों तुलसीदास के चरणों पर पड़ गए। फिर सब लोग राम का भजन करते और तुलसीदास की जय मनाते गाजे-बाजे के साथ चले गए ।

यह खबर बिजली की तरह चारों ओर फैल गई । बादशाह अकबर के कानों में भी यह बात पहुँची। उसने अपने दरबार में तुलसीदास की तारीफ की। लेकिन कुछ पण्डित लोग तुलसीदास से जलते थे। उन लोगों ने कहा-"राजन् ! ये सब झूठी बातें हैं। तुलसीदास का इसमें कोई बड़प्पन नहीं है। संस्कृत की रामायण को इन्होंने हिन्दी में लिख दिया है। विश्वास न हो तो जाँच करवा लें।"

यह सुन कर बादशाह ने तुलसीदास को दरबार में बुलवाया और कहा- "पण्डितजी ! मैंने सुना है कि आप काशी में बहुत चमत्कार दिखाते हैं। हमें भी कोई चमत्कार दिखाइए न।"

तुलसीदास ने बड़ी नम्रता से कहा- "मैं क्या कर दिखाऊँ ? जो कुछ दिखाना होगा श्री रामचन्द्रमी दिखाएँगे।" "अच्छा तो, हमें रामजी के दर्शन करा दीजिए। अगर न कराएँगे तो समझा जाएगा कि आप धोखेबाज हैं। इसकी सजा होगी बन्दी खाना" बादशाह ने धमकाना चाहा।

"राम भजन के सिवा और कोई चमत्कार नहीं जानता। आपकी जो इच्छा

हो कीजिए।" तुलसीदास ने सरल भाव से कहा।

"जाओ ! इस ढोङ्गी को कैद में डाल दो। जब तक यह मुझे रामचन्द्र के दर्शन न कराएगा, इसे छुटकारा नहीं मिलेगा।" बादशाह ने सिपाहियों को हुक्म दिया। सिपाही गोसाई जी को बन्दी-खाने में डाल आए।

थोड़ी देर बाद वह बूढ़ा ब्रह्मचारी तुलसी दास के पास आया और बोला-"राम भजन करते रहो। बादशाह को मैं पाठ पढ़ाता हूँ।" यह कह कर बूढ़ा ब्रह्मचारी चला गया।

दूसरे दिन सबेरा होते ही राजधानी में खलबली मच गई। चारों ओर जहाँ देखो बन्दर ही बन्दर नज़र आने लगे। घरों के खपडे उधेड़ दिए गए। पेड़ों के फल टूट गए। राहगीरों के नाक-कान नुच गए। पर-पर में घुस कर बन्दर ऊधम मचाने और सब कुछ नष्ट- भ्रष्ट करने लग गए। बादशाह के रङ्ग-महल में भी बन्दर घुस आए। कुछ बन्दरों ने शाही पलङ्ग उठा लिया और ले जाकर बाहर पटक दिया।



बादशाह की कमर टूटते टूटते बची। उसने तुरन्त मन्त्रियों को बुला भेजा ! वे लोग मुँह लटकाए आए और हाथ जोड़ कर बोले- “जहाँपनाह! राम भक्त तुलसीदास बन्दी- खाने में हैं। मालूम होता है, यह सब उसी का फल है। बन्दर राम के भक्त कहे जाते हैं।"

यह सुन कर बादशाह घबराया हुआ तुलसीदास के पास पहुँचा। "महात्मा। मैं क्षमा चाहता हूँ। इन बन्दरों से हमारा पिण्ड छुड़ा दीजिए।" उसने गिड़गिड़ा कर कहा।

बेचारे तुलसीदास जी को क्या मालूम था कि बाहर क्या हो रहा है? वे तो राम भजन

में मग्न थे। इसलिए उन्होंने कहा-"बन्दर ! बन्दर कहाँ से आए दिल्लीश्वर !" बादशाह उन्हें बाहर ले गया। तुलसीदास को देखते ही बानरों की सेना सिर झुका कर खड़ी हो गई।

यह देख तुलसीदास ने पुलकित होकर कहा-"शाहंशाह ! आप बड़े भाग्यशाली हैं। आपको रामचन्द्रजी के दर्शन अवश्य होंगे। ये बन्दर इसी बात की सूचना देने आए हैं। रामचन्द्र के यहाँ बन्दरों की सत्तर पलटनें हैं। उनमें से एक यहाँ आई है। बाकी पलटने भी आ जाएँगी। उसके बाद भगवान आ जाएँगे।"

उनकी बातें सुन कर अकबर के पैरों के तले की जमीन खिसक गई। "वानरों की एक ही पलटन ने तो इस सारे शहर को बरबाद कर दिया है। और अब पूरी पलटने आ जाएँगी, तो उसका क्या होगा !" यह सोच कर वह कॉप कर बोला-"महात्मा ! मैं रामचन्द्र के दर्शन नहीं चाहता। आप कृपा करके इन चन्दरों को यहाँ से हटा दीजिए।"

तुलसीदास हनुमानजी की प्रार्थना करने लगे। देखते-देखते बन्दर जहाँ के तहाँ गायब हो गए।

उस दिन से बादशाह ने प्रतिज्ञा कर की कि वह कभी साधु-सन्तों को कष्ट न देगा । उसने तुलसीदास के अनेक सत्कार करके उन्हें हिफाजत से काशी भेज दिया।

बहुत दिन बाद तुलसीदास ने अपनी रामायण पूरी की और अन्त में भगवान रामचन्द्र में लीन हो गए। उन्होंने देश के लिए जो सम्पदा छोड़ी उसके कारण उनका नाम अजर और अमर हो गया।



तीन जुआरी

शोभा दत्त

किसी गाँव में तीन जुआरी रहा करते थे। उनको जुआ खेलने के सिवा और कोई काम न था। एक दिन की बात थी कि तीनों जुआ खेल रहे थे। धीरे धीरे एक के पास सारा रुपया चुक गया। तब उसने बाकी दोनों से कर्ज करके जुआ खेला। लेकिन वह रुपया भी हार बैठा। अब उसके पास कानी कौड़ी भी न थी। तब उसके दोनों साथी उसे रुपए के लिए तङ्ग करने लगे। वह बेचारा बढ़ी मुश्किल में पड़ गया। मरता क्या न करता ! आखिर उसने मुठ्ठी भर धूल उठा कर अपने साथियों की आँखों में झोंक दी और इस गड़बड़ी में नौ-दो ग्यारह हो गया।

उसके साथी ठण्डे पानी से अपनी आँखें धोकर थोड़ी देर बाद अपने धोखेबाज दोस्त को खोजने निकले। वे मन ही मन उसे कोसते हुए कहते जा रहे थे कि "बच्चू पकड़ा गया तो खूब खबर लेंगे।" दोनों साथियों ने बड़ी देर तक उसको खोजा। गलियों, बाजारों में घूम-घूम कर आखिर वे बहुत थक गए। लेकिन उसका कहीं पता न चला। आखिर हैरान होकर वे एक अमराई में एक पेड़ की ठण्डी, घनी छाँह में जा बैठे। जब बैठे बैठे जी उब गया तो जुआ खेलने लगे। उनका साथी जिसकी खोज में वे बेचारे घूमते घूमते थक गए थे उसी पेड़ की एक डाली पर दुबका बैठा था। पहले तो अपने साथियों को देख कर उसकी जान में जान न रही। लेकिन जब उसने उन दोनों को जुआ खेलते देखा तो उसका सारा भय दूर हो गया। वह सब कुछ भूल कर जुए का खेल देखने लगा। वह इतना तन्मय हो गया कि उसे बीते बाकयों की याद ही न रही। ज्यों-ज्यों खेल चलता गया त्यों-त्यों उसके मन का जोश बढ़ता गया। आखिर थोड़ी देर में वह अपने आप को मूल गया और यह कहते हुए नीचे कूद पड़ा "ठहरो! ठहरो! मुझे भी एक दाव खेलने दो।" उसके साथियों ने उसे पकड़ लिया और खूब मरम्मत की। बच्चो! देखी तुमने जुए की महिमा !



बहुत दिन पहले एक गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम रामभट्ट था। उसके मन में तीर्थ करने और पवित्र नदियों में स्नान करने की बड़ी इच्छा थी। लेकिन वह बड़ा ही गरीब था। इसलिए उसकी इच्छा पूरी न हुई।

जब उस ब्राम्हण का अन्तकाल निकट आ गया, तो उसने अपने इकलौते लड़के श्याम को बुला कर कहा-"बेटा ! बहुत चाहने पर भी मैं अपनी जिन्दगी में न कोई तीर्थ ही कर सका और न पवित्र नदियों में स्नान ही कर सका। मेरी वह लालसा अपूर्ण ही रह गई। नगर हो सके तो तुम मेरी हड्डियों को पवित्र नदियों में विसर्जन कर देना। अगर सभी नदियों में न हो सके तो कम से कम गङ्गा में तो जरूर प्रवाहित कर देना। अगर तुम इतना कर दोगे तो मेरी आत्मा को शान्ति मिल जाएगी।" इस प्रकार अन्तिम इच्छा प्रगट करके रामभट्ट ने प्राण छोड़ दिए।

श्यामभट्ट को अपने पिता पर बड़ी श्रद्धा थी। उसने निश्चय कर लिया "वैसे न हो सकेगा, तो कर्ज-वर्ज करके भी मैं अपने पिता की इच्छा पूरी करूँगा। उनका पुत्र होकर मैं इतना न कर सका, तो मेरा जन्म ही किस काम का ?" चाहे जितना भी कष्ट उठाना पडे, काशी जाकर गङ्गाजी में अस्थि विसर्जन करने का सङ्कल्प उसने कर लिया। लेकिन उन दिनों आज की तरह रेल और मोटरें तो थी नहीं। यात्रा करना बहुत ही मुश्किल था। पैदल ही जाना पड़ता था। घोर जङ्गलों और ऊँचे पहाड़ों को पार करना

पडता था। चोर डाकुओं और जङ्गली जानवरों का डर लगा रहता था। जो लोग तीर्थ करने जाते थे वे अकसर लौट कर न आते थे। इसलिए एक कहावत हो गई थी-"जो काशी जाता है, वह चिता पर चढ़ कर जाता है !"

श्यामभट्ट भी पैदल ही चला। राह में जो जो तीर्थ पड़ते दर्शन कर लेता। लेकिन उसका मन तो हमेशा पिता के ध्यान में लगा रहता था। इसलिए यह उनकी हड्डियों की पोटली को बड़ी सावधानी से लिए चल रहा था।

इस तरह चलते चलते वह कड़पा पहुँचा। वहाँ उसे पिनाकिनी नदी मिली। उसने सोचा-"पिनाकिनी में नहा तो लूँ।" हड्डियों की पोटली किनारे पर रख कर वह नदी में उतरा। नहा धोकर किनारे आया तो देखा कि नदी के पानी से पोटली भीग गई है। "अच्छा! धूप में सुखा लूँगा।" यह सोच कर उसने पोटली खोली।



लेकिन यह क्या ? पोटली खोलते ही उसे अस्थियों के बदले दिव्य सुगन्ध वाले विकसित, उजले फूल दिखाई पड़े। उसे बहुत अचरज हुआ। उसने सोचा-"आहा ! पिनाकिनी की कैसी महिमा है! काशी के गङ्गाजल की महिमा मैं सुनता ही आया हूँ। लेकिन पिनाकिनी की महिमा तो आँखों के सामने है। अब काशी जाने की क्या जरूरत रही ! मेरे पिता को यहीं मुक्ति मिल जाएगी। मेरा कर्तव्य यहीं पूरा हो जाएगा। आज मेरा जीवन सफल है।" यह सोच



कर उसने अत्यन्त आनन्द से अस्थि विसर्जन कर दिया और घर लौट चला।

जिस जगह श्यामभट्ट ने स्नान किया था वहाँ एक घाट बन गया। आस-पास के गाँवों की औरतें वहाँ नहाने और पानी भरने लगीं। गाय गोरू भी वहाँ आकर पानी पिया करते।

एक दिन एक बूढ़ा चरवाहा अपने ढोरों को पानी पिलाने यहाँ आया। उसकी गाएँ बड़ी दुबली-पतली थीं। लेकिन उस घाट का पानी पीते ही वे मोटी-ताजी बन गई। यह देख कर उस बूढ़े को बड़ा अचरज हुआ। वह भी वहीं नहाने लगा। नहा-धोकर जब ऊपर आया तो वह भी मोटा-ताजा बन गया। उसका बुढ़ापा जाने कहाँ भाग गया। संयोग से उसी समय उस चरवाहे की औरत पानी भरने आ रही थी। चरवाहे ने हँस कर उसकी ओर देखा।

औरत ने समझा कि कोई शोहदा है। यह गाली-गलौज करने लगी। चरवाहे ने उसे बहुत समझाया बुझाया कि "मैं तुम्हारा पति हूँ। पिनाकिनी नदी में स्नान करके अब जवान बन गया हूँ।" लेकिन उसने कुछ नहीं सुना। तब चरवाहे ने उसे जबर्दस्ती खींच कर पानी में धकेल दिया।

बस, देखते ही देखते वह बदसूरत बूढ़ी एक सुन्दरी बन गई। अब चरवाहा अपनी स्त्री के साथ घर आया तो उसके बाल-बच्चे और अड़ोसी पड़ोसी दोनों को बिलकुल न पहचान सके। धीरे-धीरे जब यह समाचार चारों ओर

फैला तो बिना किसी के बताए यह भेद लोगों पर प्रगट हो गया और उस दिन से सब लोग उस घाट पर स्नान करने लगे। वे देवताओं की तरह अमर बनने लगे।

कुछ दिन बाद यह बात तीनों लोकों में घूमने वाले नारद मुनि को मालूम हुई। नारद को तो लोग खूब जानते हैं। वे किसी की भलाई नहीं देख सकते। इतने लोगों को अमर होते वे कैसे देख सकते थे। इसलिए वे सोचने लगे कि कैसे इसमें बिघ्न डाला जाए।

आखिर एक दिन उन्होंने ब्रम्हाजी के पास जाकर सब हाल कह सुनाया। ब्रह्मा ने ध्यान लगा कर देखा कि इस घाट को ऐसी महिमा कहाँ से मिली। उन्हें पता लगा कि अपनी माँ की गुलामी छुड़ाने के लिए गरुड़ अमृत की हाँडियाँ चुरा लाए थे। इसलिए देवताओं के राजा इन्द्र से गरुड़ की लड़ाई हुई। उस हलचल में अमृत की एक बूँद पिनाकिनी के इस घाट



पर गिर पड़ी। इसी से उस घाट को वह अद्भुत महिमा प्राप्त हो गई।

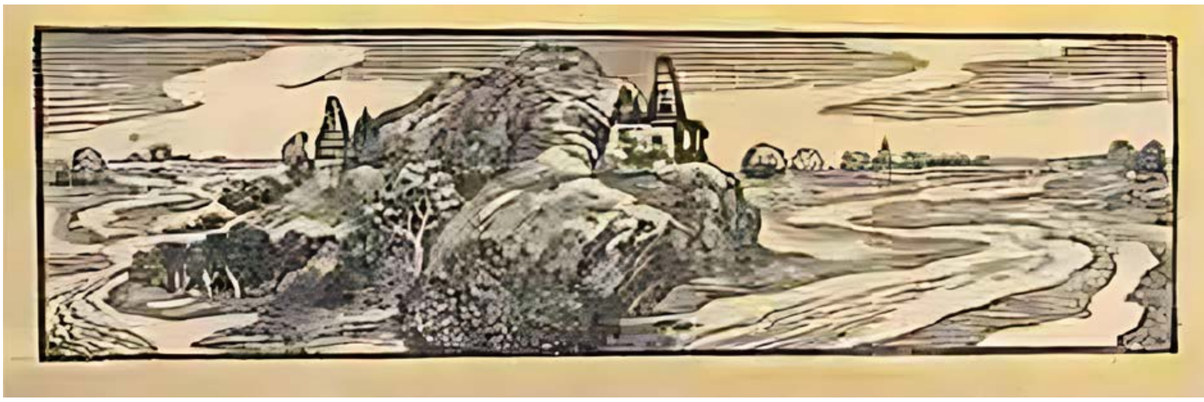
नारद के कहने से ब्रम्हा भी सोचने लगे कि अमरत्व का यह फल लोगों को नहीं मिलना चाहिए। इसलिए उन्होंने हनुमान जी को बुला कर कहा-"हनुमान। एक पहाड़ उठा कर पिनाकिनी के उस घाट में डाल दो।"

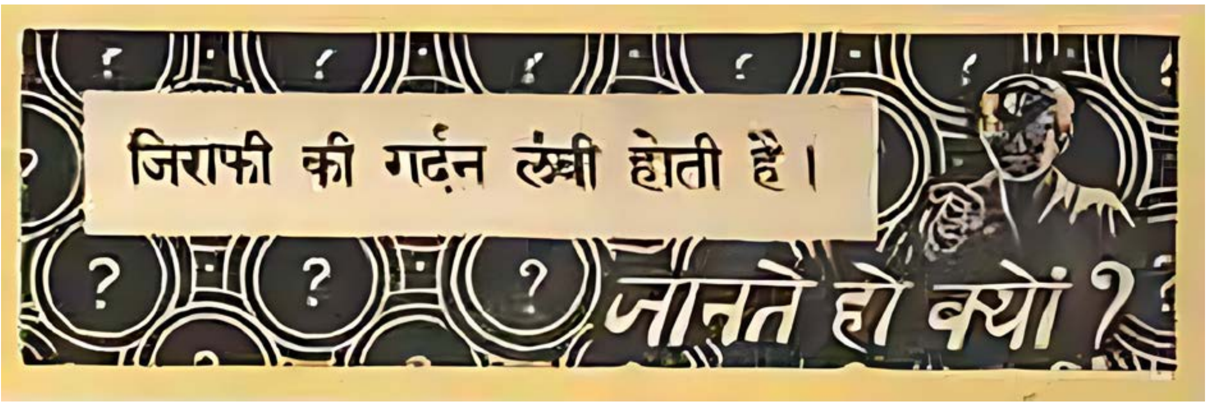
तुरन्त हनुमान जी उठे और एक पहाड़ लाकर उस घाट में डाल दिया। लेकिन पिनाकिनी का प्रभाव ऐसा था कि वह पहाड़ पानी पर काग की तरह तैरने लगा।

यह देख कर ब्रम्हाजी घबरा गए। आखिर जब उन्हें कुछ नहीं सूझा तो वे नारद को साथ लेकर शिवजी के पास गए। लेकिन शिवजी को भी कोई उपाय न सूझा। तब तीनों वहाँ से सीधे भगवान विष्णु के पास बैकुण्ठ पहुँचे और उनसे सारा हाल कुछ सुनाया।

तब भगवान ने मुसकुराते हुए कहा- "मुझ पर और ब्रह्मा जी पर हमेशा ऐसी ही आफतें आया करती है। तिस पर नारद कभी चुप नहीं रहते।" फिर धीरज देकर भगवान ने दोनों को विदा किया।

इसके बाद भगवान महादेव जी के साथ मनुष्य रूप पर कर भूलोक में आए। दोनों ने उस जल में तैरते हुए पहाड़ को दोनों ओर से पकड़ कर दबा दिया। उनके प्रभाव से पहाड़ जमीन में बैठ गया और वह घाट मनुष्यों के लिए दुर्लभ हो गया। पिनाकिनी के जल ने रामभट्ट की हड्डियों को फूलों में बदल दिया था। उस पानी में हनुमान जी ने पहाड़ लाकर गिरा दिया था। इन दोनों के कारण उस जगह का नाम 'पुष्प-गिरि' पड़ गया। भगवान विष्णु और महादेव ने उस पहाड़ को दोनों ओर से पकड़ कर दबा दिया था। इसलिए पहाड़ के दोनों ओर उन दोनों के मन्दिर बन गए, जो आज भी वहाँ है। उस जगह आज भी हर साल बड़े उत्सव होते हैं। लाखों आदमी भगवान के दर्शन के लिए आते हैं। उस जगह की महिमा ऐसी है कि पुष्प गिरि के स्वामीजी ने वहाँ अपना मठ भी बना लिया है। पुष्प-गिरि कडपा से दस मील की दूरी पर है। बच्चों! अगर तुम उधर जाओ तो जरूर वह तीर्थ देख आना !





किसी समय गैण्ड़े और जिराफी में बड़ी दोस्ती थी। एक दिन वे दोनों मैदान में चर रहे थे कि गैण्ड़े ने कहा-"दोस्त ! हम दोनों बहुत नाटे हैं। इसलिए हमें यह घास जो सभी जानवरों के पैरों से रौंदी गई है, खानी पड़ रही है। अगर हमारे लम्बी गर्दनें होती तो हम कितने चैन से पेड़ों की हरी भरी मुलायम पत्तियाँ खाते-फिरते !"

"लेकिन भगवान ने हमें लम्बी गर्दन दी ही नहीं; फिर अब सोच करने से क्या फायदा है ?" जिराफी ने जवाब दिया जैसे उसका लम्बी गर्दन से कोई मतलब ही नहीं हो।

तब गैण्ड़े ने थोड़ी देर तक सोच-विचार कर कहा-"दोस्त ! मुझे एक सुन्दर उपाय सूझ गया है। सुनो, मनुष्य है न ? वह अपने बुद्धि-बल से ईश्वर को भी चुनौती दे सकता है। संसार में बुद्धि से बढ़कर कोई बल नहीं। इसलिए चलो उसके पास, वह कोई न कोई सूरत निकाल ही लेगा।" यह सोच कर दोनों मिलकर मनुष्य के पास गए और अपनी इच्छा उसे कह सुनाई।

मनुष्य ने उनकी बातें सुन कर उनकी सहायता करना मञ्जूर कर लिया। उसने कहा-"तुम दोनों फलाना रोज साढ़े तीन बजे फलानी जगह आओ। मैं तुम्हारे मन की इच्छा पूरी कर दूँगा। लेकिन सुनो, तुम लोगों को समय पर वहाँ पहुँच जाना पड़ेगा। अगर देर हुई तो उसमें मेरा दोष नहीं। फिर मैं कुछ नहीं कर सकूँगा।" उसने साफ साफ बता दिया।

"इसमें क्या है ? हम लोग जरूर समय पर पहुँच जाएँगे।" दोनों ने कहा। उस

दिन नियत समय पर जिराफी उस जगह पहुँच गया।

मनुष्य वही बैठा मन्त्र जप रहा था। जिराफी को देख कर वह उठ आया। "दोनों आ गए ?" उसने पूछा।

"नहीं, गैण्ड़ा पीछे आ रहा है। मुझे आगे जागे जाने को कहा।" जिराफी ने जवाब दिया।

तब मनुष्य ने झुञ्झलाते हुए कहा- "अच्छा, तुम आओ। समय बीता जा रहा है। आओ! अपना मुँह खोलो !"

जब जिराफी ने मुँह खोला तो उसने एक जड़ी अन्दर डाल दी और एक मन्त्र पढ़ कर कमण्डल का जल छिड़क दिया। ज्यों ही कमण्डल का जल देह के अन्दर पहुँचा कि जिराफी की टाँगे और गर्दन बढ़ने लगीं। तब जिराफी ने मनुष्य को धन्यवाद दिया और कहा "मेरे दोस्त के बारे में क्या कीजिएगा ?"

"जो समय पर नहीं जाते उनकी यही हालत होती है। गैण्ड़े के लिए जो जड़ी रखी थी वह भी तुम्हीं खा लो। इससे तुम्हें और भी फायदा होगा।" यह कह कर मनुष्य ने गैण्ड़े के लिए जो जड़ी रख छोड़ी थी वह भी जिराफी को खिला दी और उसे भेज दिया।

जिराफी अपने नए रूप में जङ्गल में गया और घास चरने के बदले चैन से घूम-फिर कर पेड़ों के हरे-हरे, ताजे, मुलायम पत्ते खाने लगा।

एक दिन जब गैण्ड़े ने उसे देखा तो उसने जिराफी से सारा हाल पूछा और कहा-"मान लो कि मुझसे थोड़ी देर हो ही गई ! तो क्या मेरे लिए जरा ठहर नहीं सकता था वह ? मैंने मनुष्य को इतना दुष्ट नहीं समझा था ! देख लेना, अब उसकी क्या गत बनाता हूँ।" उस दिन से गैण्ड़े ने मुर्खता-वश मनुष्य से दुश्मनी ठान ली। जिराफी ने मनुष्य से दोस्ती की। इसलिए उसकी गर्दन लम्बी हो गई।



